पिछले वर्ष अगस्त में जब पूँजीवाद के दुर्धर्ष आलोचक, राजनीतिक अर्थशास्त्र के रैडिकल चिंतक और वैश्वीकरण के विरुद्ध विश्वव्यापी प्रतिरोध के प्रखर सिद्धांतकार समीर अमीन (1931–2018) का निधन हुआ तो उसमें मृत्यु से उपजे शोक जैसा भाव बहुत ज़्यादा नहीं था। उन्हें एक लम्बी उम्र मिली थी जिसे उन्होंने अपनी जन-पक्षधर राजनीति के जुझारू विमर्श और बेधड़क बौद्धिकता के साथ इस अदा से जिया कि उसमें कुछ छूट जाने की बहुत ज़्यादा गुंजाइश नहीं थी। यह एक ऐसा जीवन था जिसमें सिद्धांत और सक्रियता कभी एक-दूसरे से ओझल नहीं हुए।

अपने लगभग छह दशकों के बौद्धिक जीवन में समीर अमीन एक बेहतर दुनिया का ख़्वाब बुनते रहे। 1980 में उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय शोध केंद्रों के नेटवर्क— *थर्ड वर्ल्ड फ़ोरम* की कमान सँभाली। 1997 में गठित *वर्ल्ड फोरम फ़ॉर ऑल्टरनेटिव्ज़* की स्थापना और संचालन में उनकी मुख्य भूमिका रही थी। इस तरह उनके कृतित्व को अविकसित, अल्पविकसित और विकासशील जैसी राष्ट्रीय संज्ञाओं के पीछे खटते, ग़ैर-बराबरी और शोषण से जूझते असंख्य लोगों के सामूहिक संघर्ष का सैद्धांतिक मोर्चा कहना ग़लत न होगा। इस अर्थ में उनका लेखन उन शक्तियों, प्रवृत्तियों और कुचक्रों को अनावृत्त करता है जिनके चलते बेहतर दुनिया का स्वप्न हक़ीक़त में नहीं बदल पाता।

मिस्री मूल के पिता और फ्रेंच माँ की संतान समीर अमीन का जन्म तीन सितम्बर, 1931 में काहिरा में हुआ। बचपन और यौवन पोर्ट सईद में गुज़रा और उच्च शिक्षा व बौद्धिक दीक्षा पेरिस में सम्पन्न हुई। अमीन ने अपना सफ़र राजनीति-विज्ञान के अध्ययन से शुरू किया। इसके बाद वे सांख्यिकी से होते हुए अर्थशास्त्र तक पहुँचे। पूँजीवाद से पहले की अर्थव्यवस्थाओं के अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में रूपांतरित होने की प्रक्रिया पर एकाग्र उनके शोध-अध्ययन को तत्कालीन अकादमिक दुनिया में एक उल्लेखनीय योगदान माना गया। यह देखना दिलचस्प है कि औपचारिक तौर पर समीर

विज्ञान और तकनीकी क्रांति से उपजी स्थितियों के चलते पूँजीवाद श्रम का अधिकतम दोहन कर चुका है इसलिए अब वह आगे निरंतर संचय नहीं कर सकता। दूसरे, वैश्विक स्तर पर काम करने वाला साम्राज्यवाद का एक ख़ेमा अब परिधि के देशों को उधार के पूँजीवादी विकास की अनुमति नहीं देता। उनके अनुसार अगर यह ख़ेमा परिधि को पूँजी का निर्यात न करके दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों से बटोरे गये अधिशेष पर निर्भर करता है और अपना वर्चस्व बरक़रार रखने के लिए मीडिया विमर्श का सहारा लेता है तो इसका मतलब है कि यह व्यवस्था दुनिया के अस्सी फ़ीसद लोगों को कुछ नहीं दे सकती।

अमीन का यह शोध-अध्ययन 1957 में पूरा हो चुका था, लेकिन एक विषय के रूप में यह प्रश्न उनके सामने जीवनपर्यंत मौजूद रहा कि विकसित और पिछड़े देशों में आय, जीवन-स्तर और विनिमय का अंतर कहाँ से पैदा होता है। दरअसल, समीर अमीन विकासशील दुनिया की उस नयी बौद्धिक पीढ़ी के प्रतिनिधि थे जिसे वि-औपनिवेशीकरण की अल्पजीवी ख़ुशफ़हमी के बाद जल्द ही इस सवाल से टकराना पड़ा कि राजनीतिक मुक्ति-संघर्षों के बावजूद दुनिया के आम लोगों का यथार्थ क्यों नहीं बदला!

अमीन ने इस प्रश्न की खोज अफ़्रीका के विभिन्न देशों— माली, कोंगो, मिस्र, सेनेगल और घाना आदि की अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन से शुरू की। इस दौरान उनकी *मग़रिब इन द मॉडर्न वर्ल्ड, नियो-कोलोनियलिज़म इन वेस्ट अफ़्रीका, अनईक्वल डिवेलपमेंट* तथा *द अरब नेशन : नैशनलिज़म ऐंड क्लास स्ट्रगल* जैसी चार महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुईं जिन्हें एक तरह से वि-उपनिवेशीकरण से जन्मे छद्म आशावाद का पटाक्षेप कहा जा सकता है। इन रचनाओं में अमीन ने मग़रिब तथा पश्चिमी अफ़्रीकी देशों की राजनीतिक आज़ादी को नव-उपनिवेशवाद का महज़ एक और रूप घोषित करते हुए तर्क दिया कि अपने पूर्व-औपनिवेशिक शासकों के साथ इन देशों का आर्थिक संबंध बेहद अधीनस्थ क़िस्म का है।

पिछड़े और अविकसित देशों की अधीनस्थ अर्थव्यवस्थाओं के सूत्रों को खोलते हुए अमीन ने अपनी एक अन्य रचना *एक्युमुलेशन ऑन अ वर्ल्ड स्केल* में एक महत्त्वपूर्ण तर्क पेश किया कि विकास का पूँजीवादी सिद्धांत अल्पविकास को ग़रीबी के साथ जोड़ कर विभ्रम पैदा करता है। वह विकासशील देशों के आर्थिक लक्षणों को उनकी सामाजिक संरचना और राजनीतिक व्यवस्था से विच्छिन्न करके इस जटिल सच्चाई की तरफ़ ध्यान नहीं जाने देता कि अल्पविकास ग़रीबी का महज़ बाहरी हुलिया नहीं होता। अमीन इस अल्पविकास को पूँजी के विस्तार की उस वैश्विक व्यवस्था के संचयी परिणाम के रूप में परिभाषित करते हैं जो केंद्र और परिधि के दो भागों में विभाजित है। अपने इस सूत्रीकरण को आगे बढ़ाते हुए अमीन ने बताया कि अल्पविकास के पीछे तीन कारक काम करते हैं : पहला, केंद्र और परिधि के बीच उत्पादन की असमानता; दूसरा, केंद्र की अर्थव्यवस्थाओं की माँग पूरी करने के लिए पैदा किया गया दबाव जिसके चलते अविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आंतरिक विनिमय का अवरुद्ध हो जाना; परिधि की अर्थव्यवस्था, समाज और राजनीति पर केंद्र का निर्णायक वर्चस्व।

अमीन का तर्क था कि मुख्यधारा का अर्थशास्त्र केवल पूँजीवादी विस्तार के प्रबंधन की तरक़ीबें गढ़ता है। उसका इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि विकास की प्रक्रिया में समाज किस तरह आंतरिक संघर्षों में फँस जाता है। उनका यह भी कहना था कि बेशक पूँजीवाद किसी ख़ास जगह या समय पर पैदा होता है, लेकिन एक बार अस्तित्व में आने के बाद उसका विस्तार पूरी दुनिया में होने लगता है। इस सूत्रीकरण को ग़ौर से देखें तो साफ़ पता चलता है कि समीर अमीन मार्क्स के इस मूल तर्क को स्वीकार नहीं करते कि पूँजीवाद का संकट मुनाफ़े की घटती दर का परिणाम होता है। अमीन

इस सूत्र में संशोधन करते हुए कहते हैं कि अब पूँजीवाद का वैश्विक मॉडल प्रौद्योगिकी, वित्तीय प्रवाह के नियंत्रण, सैन्य शक्ति, वैचारिक और मीडिया-उत्पादन तथा प्राकृतिक संसाधनों पर केंद्रस्थ देशों के एकाधिकार में बदल चुका है। पूँजीवादी व्यवस्था में असमानताएँ इसलिए ख़त्म नहीं होती क्योंकि उनके पीछे असमान विनिमय का एक ताक़तवर तंत्र काम करता है। अमीर देशों ने श्रम का एक ऐसा अंतर्राष्ट्रीय ढाँचा तैयार कर दिया है जिसमें बाक़ी देश उनके अधीनस्थ होकर काम करते हैं। यह मूलतः एक शोषणकारी व्यवस्था है जो पहले प्रत्यक्ष औपनिवेशिक नियंत्रण के ज़रिये काम करती थी, लेकिन अब परिधि के देशों को विनिमय के असमान तंत्र से जोड़कर काम करती है।

एकाधिकार और असमान विनिमय का यह तंत्र ऐसे अकल्पनीय मुनाफ़े की स्थिति तैयार करता है जिसे बाज़ार की प्रतिस्पर्धा के तहत कभी हासिल नहीं किया जा सकता। इससे दो साफ़ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं : एक, साम्राज्यवाद के लाभार्थियों को वैश्विक बाज़ार में मात नहीं दी जा सकती, और दूसरे, बाज़ार की 'मुक्त' प्रक्रियाओं के बावजूद वैश्विक हैसियत स्थान-विशेष के साथ नत्थी रहती है।

अमीन के मुताबिक़ इस व्यवस्था के कारण ग़रीब देशों में विकास की प्रक्रिया अंततः उनके पिछड़ेपन की प्रक्रिया बन कर रह जाती है। ऐसे देशों में आर्थिक वृद्धि तो दिखाई देती है, लेकिन यह वृद्धि उनके दूरगामी विकास में सहायक नहीं होती क्योंकि उनका अधिशेष स्थानीय अर्थव्यवस्था को मज़बूत करने के बजाय सम्पन्न देशों के खाते में चला जाता है। अमीन का मानना था कि मौजूदा दौर में संरचनागत समायोजन (स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट) और कर्ज़ का भुगतान— दो ऐसे प्रमुख उपाय बन चुके हैं जिनके ज़रिये ग़रीब देशों का अधिशेष सम्पन्न देशों की तरफ़ मोड़ दिया जाता है। इस तरह, अमीन अल्प-विकास को अतीत के औपनिवेशिक अनुभवों अथवा पूर्व-औपनिवेशिक शक्तियों (केंद्र) द्वारा पूर्व-उपनिवेशों (परिधि) के शोषण व एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के तौर पर असमान विनिमय, असमान विकास और साम्राज्यवाद का संचयी परिणाम घोषित करते हैं। उनका बुनियादी तर्क यह है कि केंद्र की अर्थव्यवस्थाओं में तो आर्थिक वृद्धि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच सामंजस्य पैदा करने का काम करती, लेकिन परिधि की अर्थव्यवस्थाओं में वह अल्पविकास को बढ़ावा देते हुए उसकी सामाजिक संरचनाओं को अवरुद्ध करने लगती है।

इसका खुलासा करते हुए अमीन कहते हैं कि केंद्र और परिधि के इस तंत्र में सम्पन्न देश मुख्यतः पूँजीगत और उपभोक्ता उत्पाद पैदा करते हैं। इन देशों में संसाधनों का संग्रह समय के साथ संचित होता जाता है, जबकि परिधि के ग़रीब देशों में संग्रह की यह प्रक्रिया जड़ता का शिकार हो जाती है। और इसकी वजह यह होती है कि असंसाधित उत्पादों और उपभोक्ता उत्पादों का मूल्य कुछ इस तरह निर्धारित किया जाता है कि उनके बीच एक ख़ास तरह का अंतर बना रहता है : समय के साथ उत्पादित वस्तुओं का मूल्य बढ़ता चला जाता है, जबकि असंसाधित अथवा कच्चे पदार्थों का मूल्य या तो एक बिंदु पर स्थिर रहता है अथवा घटता-बढ़ता रहता है।

इसके अलावा, सम्पन्न देशों में जहाँ कामगारों का वेतन विकास के विभिन्न चरणों के साथ बढ़ता रहता है, वहीं ग़रीब देशों में वेतन की बढ़त बहुत मामूली होती है। इसका एक कारण यह है कि परिधि के देशों में कामगारों का वेतन श्रम के अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार से सम्बद्ध नहीं रहता, और दूसरे, इन देशों का राज्य-तंत्र आमतौर पर बेहतर वेतन की माँग करने वाले आंदोलन को कुचलने पर आमादा रहता है।

नवें दशक के बाद अमीन का अधिकांश लेखन वैश्वीकरण पर केंद्रित होता गया। वैश्वीकरण की परिघटना को अमीन आर्थिक प्रक्रियाओं के बृहत्तर स्थापत्य में रखकर देखते थे। जैसा कि हमने शुरू में ज़िक्र किया था, उन्होंने अफ़्रीका के कई देशों की अर्थव्यवस्थाओं का स्वतंत्र इकाइयों के रूप में अध्ययन किया था, लेकिन अपने अध्ययन से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि वैश्विक अर्थव्यवस्था

दरअसल एक ऐसी एकीकृत परिघटना है जिसमें श्रम के शोषण और राज्य-व्यवस्था के बीच अंतर नहीं किया जा सकता।

अमीन वैश्विक बाज़ार को एक विसंगत परिघटना मानते थे क्योंकि वह एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया का परिणाम है जिसमें कर्मचारियों को एक जैसा या एक समान अवधि के दौरान किये जाने वाले काम के बदले अलग-अलग दर से वेतन दिया जाता है। मसलन, किसी विकसित देश का कामगार केवल एक घंटे के काम के बाद जितने वेतन का हक़दार हो जाता है, उतना वेतन अविकसित देश के कामगार को आठ घंटे के श्रम के बाद भी मयस्सर नहीं होता। अमीन का स्पष्ट मानना था कि वैश्वीकरण से इस असमान विनिमय का क़तई ख़ात्मा नहीं होगा क्योंकि दुनिया भर की विभिन्न कम्पनियाँ असमान विनिमय के इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही अपने उत्पादन की प्रक्रिया ग़रीब देशों को आउटसोर्स करती हैं। वैश्वीकरण को अमीन अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के प्रबंधन का एक ख़ास रूप मानते थे। दशक के आख़िर में आयी अपनी किताब *कैपिटलिज़म इन द ऐज ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन* में उन्होंने यह कहा कि वैश्वीकरण को एक वैकल्पिक मानवीय परियोजना का रूप देने के लिए उसे बहु-केंद्रिक बनाया जाना चाहिए। लेकिन यह बात कहते हुए वे इस तथ्य के प्रति भी सावधान थे कि ऐसा कोई भी एजेण्डा जनता और लोकतांत्रिक शक्तियों की व्यापक एकता के बिना सफल नहीं हो सकता।

अमीन का मानना था कि केंद्र और परिधि के इस शोषणकारी तंत्र को केवल 'डिलिंकिंग' यानी दुनिया के विभिन्न देशों और क्षेत्रों द्वारा अपने पारस्परिक संबंधों को केंद्र की मातहती से मुक्त करके ही चुनौती दी जा सकती है। अमीन के सूत्रीकरण में डिलिंकिंग का अर्थ बाहरी सम्पर्क से पीठ फेरना नहीं, बल्कि अपने आंतरिक विकास की प्राथमिकताएँ तय करना और उन नीतियों की बाहरी आर्थिक ताक़तों के हमले से हिफ़ाज़त करना है। इस अवधारणा में मूल्य का एक ऐसा स्वतंत्र क़ानून बनाना भी निहित है जो पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा निर्धारित किये गये क़ानून से आज़ाद होकर काम कर सके। मसलन, अमीन का कहना था कि दुनिया में उत्पादों का मूल्य सम्पन्न देशों के उत्पादन से तय किया जाता है, जबकि मूल्य-निर्धारण का काम देश के स्तर पर किया जाना चाहिए ताकि खेतिहर और औद्योगिक कामगारों को समाज के निवल उत्पादन में उनके योगदान के आधार पर भुगतान किया जा सके। उनका कहना था कि यह उपाय अपनाने से खेती में मज़दूरी की दर बढ़ाई जा सकेगी। इस अवधारणा के पीछे अमीन की यह समझ थी कि उपनिवेशवाद के बाद उभरी नव-औपनिवेशिक विश्व-व्यवस्था में कई देश अपनी स्वायतता को इस सत्ता से लड़ने का औज़ार बना सकते हैं। इस अर्थ में डिलिंकिंग परिधि के देशों द्वारा अर्जित की गयी स्वायत्तता में प्रतिरोध की सम्भावना देखती है। अमीन का मानना था कि नव-उदारतावाद की यह वैश्विक क़िलेबंदी केवल डिलिंकिंग के ज़रिये ढहाई जा सकती है। उनका कहना था कि डिलिंकिंग की इस प्रक्रिया में समाज के पारम्परिक वर्गों और मौजूदा विश्व-व्यवस्था में धँसे राष्ट्रों के बजाय ग़रीब किसान, सीमांत मज़दूर और शहरों में रहने वाले निर्धन लोग ही प्रमुख भूमिका निभाएँगे। इस अर्थ में डिलिंकिंग का विचार वंचितों की राजनीति से जुड़ता दिखाई देता है। ग़ौर से देखें तो यह अवधारणा एक साथ दो काम करती है। एक तरफ़ वह पूँजीवाद के प्रसार के एक महत्त्वपूर्ण घटक पर अंदर से चोट करती है तो दूसरी ओर एक नयी दुनिया के निर्माण का ख़ाका पेश करती है। उनका कहना था कि नव-उदारतावाद की निरंकुशता का जवाब एक बहु-केंद्रिक दुनिया ही हो सकती है।

समकालीन राजनीति, वैश्विक व्यवस्था और पूँजीवाद के अंतर्संबंधों की गहरी पड़ताल करती अपनी एक अन्य किताब— *ऑबसोलिसेंट कैपिटलिज़म : कंटेम्परारी पॉलिटिक्स ऐंड ग्लोबल डिसऑर्डर* में पूँजीवाद के भविष्य पर चिंतन करते हुए उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण बात कही कि मानव-सभ्यता को अपना अस्तित्व बरक़रार रखने के लिए पूँजीवाद से उपजी विकृतियों पर काबू पाना होगा। पहले

विश्व-युद्ध से लेकर वैश्वीकरण के मौजूदा दौर को चिह्नित करती इस रचना में अमीन कहते हैं कि पूँजीवादी संचय और जनता के दरिद्रीकरण से संबंधित मार्क्स का सिद्धांत पिछले दो सौ वर्षों में लगातार सही साबित होता गया है। इसलिए वे विकास की पूँजीवादी अवधारणा का प्रत्याख्यान करते हुए उसकी एक वैकल्पिक परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। अमीन के मुताबिक़ विकास का मतलब दूसरों के बराबर पहुँचना नहीं होता, बल्कि उसका आशय एक ऐसे वैकल्पिक समाज का निर्माण करना होता है जिसमें एक ओर मनुष्यता अर्थवादी परायेपन से उबर सके तो दूसरी तरफ़ दुनिया में ख़ेमेबंदी की विरासत का ख़ात्मा किया जा सके। उनका मानना है कि इन लक्ष्यों को ज़मीन पर उतारने के लिए वैश्विक स्तर पर लामबंदी करनी होगी क्योंकि अब मनुष्यता का संकट किसी एक देश के बजाय पूरे विश्व का संकट बन चुका है। पूँजीवाद के मौजूदा स्वरूप को लेकर अमीन की समझ साफ़ थी कि वह एक ऐसी बुढ़ाती हुई व्यवस्था है जो अब स्वस्थ नहीं हो सकती, लिहाज़ा उससे या तो अंततः समाजवाद का प्रादुर्भाव होगा अथवा मनुष्यता आत्महत्या के कगार पर जा पहुँचेगी।

ऐसा नहीं है कि अमीन यह सब किसी जड़सूत्रवाद की आदत के चलते कह रहे थे। इस मामले में उनके पास कुछ ठोस तर्क थे। उनका कहना था कि विज्ञान और तकनीकी क्रांति से उपजी स्थितियों के चलते पूँजीवाद श्रम का अधिकतम दोहन कर चुका है इसलिए अब वह आगे निरंतर संचय नहीं कर सकता। दूसरे, वैश्विक स्तर पर काम करने वाला साम्राज्यवाद का एक ख़ेमा अब परिधि के देशों को उधार के पूँजीवादी विकास की अनुमति नहीं देता। उनके अनुसार अगर यह ख़ेमा परिधि को पूँजी का निर्यात न करके दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों से बटोरे गये अधिशेष पर निर्भर करता है और अपना वर्चस्व बरक़रार रखने के लिए मीडिया-विमर्श का सहारा लेता है तो इसका मतलब है कि यह व्यवस्था दुनिया के अस्सी फ़ीसद लोगों को कुछ नहीं दे सकती।

अमीन का मानना था कि नव-उदारतावाद के चलते राजनीति में वर्गीय दावेदारी का स्वरूप बदल गया है। उसने लोकतंत्र को एक ऐसी प्रभावहीन प्रणाली बना डाला है जिसमें निर्वाचित सत्ताएँ वैश्विक पूँजी के सामने लाचार नज़र आती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो निर्वाचित सत्ताओं द्वारा अपनी जनता के जीवन में सकारात्मक हस्तक्षेप करने की क्षमता अब वैश्विक पूँजी की इच्छा से तय होने लगी है।

समीर अमीन के सैद्धांतिक योगदान का एक ख़ास पहलू यह है कि मार्क्सवाद से गहरे प्रभावित होने के बावजूद उन्होंने इसके सूत्रों और अंतर्दृष्टियों का अंधानुकरण नहीं किया। यह शायद इसी का नतीजा था कि उनके चिंतन में युरोप केंद्रीय प्रसंग की तरह नहीं आता। अपनी एक रचना *युरोसेंट्रिज़्म* में उन्होंने युरोप को दुनिया के इतिहास का केंद्र मानने से इंकार करते हुए कहा कि इतिहास के जिन चरणों को युरोपीय कहकर गौरवान्वित किया जाता है, उनका केंद्र असल में भूमध्यसागरीय क्षेत्र में स्थित था। अमीन की नज़र में युरो-केंद्रीयता विश्व-दृष्टि न होकर एक वैश्विक परियोजना ज़्यादा है

मार्क्सवाद से गहरे प्रभावित होने के बावजूद उन्होंने इसके सूत्रों और अंतर्दृष्टियों का अंधानुकरण नहीं किया। यह शायद इसी का नतीजा था कि उनके चिंतन में युरोप केंद्रीय प्रसंग की तरह नहीं आता। अपनी एक रचना *युरोसेंट्रिज़्म* में उन्होंने युरोप को दुनिया के इतिहास का केंद्र मानने से इंकार करते हुए कहा कि इतिहास के जिन चरणों को युरोपीय कहकर गौरवान्वित किया जाता है, उनका केंद्र असल में भूमध्यसागरीय क्षेत्र में स्थित था। अमीन की नज़र में युरो-केंद्रीयता विश्व-दृष्टि न होकर एक वैश्विक परियोजना ज़्यादा है जो दुनिया के पिछड़े देशों को युरोपीय मानक हासिल करने के फेर में उलझा कर दुनिया का समरूपीकरण करना चाहती है।

जो दुनिया के पिछड़े देशों को युरोपीय मानक हासिल करने के फेर में उलझा कर दुनिया का समरूपीकरण करना चाहती है।

विद्वानों का एक वर्ग अमीन की सैद्धांतिक निष्पत्तियों और सूत्रों की यह कह कर आलोचना करता रहा है कि उनमें शोषण की प्रक्रिया का स्थानीय कारक— राष्ट्रीय स्तर पर होने वाला उत्पादन, अनदेखा रह जाता है और असमान विनिमय का घटक ज़रूरत से ज़्यादा प्रमुख हो जाता है। लोगों का कहना है कि डिलिंकिंग से विनिमय की विसंगतियाँ भले ही दूर हो जाए, लेकिन इससे उत्पादन के स्तर पर पैदा होने वाली विकृतियों का निराकरण नहीं होगा। इस संदर्भ में एक अहम सवाल यह भी उठाया जाता है कि क्या विनिमय की असंगतियाँ दूर होने से देशों की आंतरिक सत्ता-सरंचना में जमी विषमताएँ ख़ुद ब ख़ुद ख़त्म हो जाएँगी?

समीर अमीन के कृतित्व का एक अंतर्विरोध यह भी है कि वह विकास के वर्चस्वी आख्यान की आलोचना करने के बावजूद विकास की अवधारणा से आगे नहीं देखना चाहता; वह अंततः जिस न्यायपूर्ण विश्व-व्यवस्था की बात करता है, उसमें भी सत्ता किसी एक जगह संकेंद्रित होती दिखती है। इधर कुछ लोग यह भी कहते हैं कि चीन, कोरिया, सिंगापुर तथा एक सीमा तक भारत जैसे देशों की तीव्र आर्थिक वृद्धि यानी परिधि के देशों में उत्पादन व वित्तीय प्रवाह के नये वैश्विक केंद्रों के उभार से केंद्र और परिधि यह विभाजन बेमानी हो गया है। ज़ाहिर है कि अमीन के चिंतन और विमर्श पर उठाए जाने वाले ये सवाल ग़ैर-वाज़िब नहीं हैं। खण्डन-मण्डन का यह सिलसिला आगे भी चलता रहेगा, लेकिन इससे अमीन के उस बहुविध योगदान की चमक फीकी नहीं पड़ेगी जो विषमता और असमानताओं के वैश्विक ढाँचे से छह दशकों तक निरंतर मुठभेड़ करता रहा।